विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NS (M)-16/84

वर्ष १४ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२८ • मार्गशीर्ष पूर्णिमा [शक] • दि. ८-१२-१९८४ • अंक ६

प्रेरक प्रसंग

(२)

भगवानके जीवनकालकी एक घटना।

राजगृहके एक संपन्न सेठके घर जन्मा रमणीयविहारी नामक श्रेष्ठि-पुत्र विलास-वैभवकी विपुलतामें पला। युवा अवस्थाको प्राप्त होने पर यौवनमदमें मूर्च्छित होकर काम-भोगोंका स्वेच्छाचारी जीवन जीने लगा। एक बार उसने देखा कि उसीकी भांति काम-व्यभिचारमें अनुरक्त होनेवाले एक राजपुरुषको काम संबंधी मिथ्याचरणके कारण राज्यकी ओरसे घोर दंड दिया गया। इसे देखकर वह भयभीत हो उठा। आकुल-व्याकुल हो उठा। मानसिक शांतिके लिए भगवानके आश्रममें गया और भगवानकी धर्मवाणी सुनकर उत्साहित हो, वहीं प्रव्रजित हो गया। भगवानसे विपश्यना साधनाकी अनुकूल विधि सीखकर एक निर्जन स्थानमें जाकर अभ्यास करने लगा। परंतु बहुत प्रयास करने पर भी सफलता नहीं मिली। पूर्व स्वभावके कारण बार-बार मन काम वासनाओंके चिंतनमें ही विचरण करने लगता और जब होश आता तो पश्चातापके पंकमें डूबने लगता; पर साक्षीभावसे विपश्यना नहीं ही कर पाता। यों खिन्न-मन सड़कके किनारे, एक पेड़के नीचे निराश बैठा हुआ था। उस समय उसने देखा कि किसी गाड़ीमें जुता हुआ एक बैल ऊबड़ खाबड़ रास्तेके के कारण ठोकर खाकर गिर पड़ा। गाड़ीवालेने प्यारसे उसे उठाया, गाड़ीके जुए से मुक्त करके कुछ देर विश्राम करने दिया, फिर कुछ चारा-पानी देकर उसकी पीठ थपथपाई और पुनः गाड़ीमें जोत दिया। वह अनुभवी बैल दुगुने उत्साहसे फिर गाड़ी खैंचने लगा और रास्ता ऊबड़-खाबड़ होते हुए भी उसे पार कर आगे बढ़ गया।

इस घटनाको देखकर साधक रमणीयविहारीके मनमें अपूर्व प्रेरणा जागी। वह बड़े उत्साहके साथ साधनामें लग गया और अल्पकालमें ही इसी जीवनमें मुक्त अवस्था को प्राप्त हो गया।

× × ×

इसी प्रकारकी एक और घटना।

नंदक और भरत अपने पूर्व पुण्योंके फलस्वरूप भगवानके जीवनकालमें चंपा नगरीके एक धनी गृहस्थके घर जन्मे। बड़े होने-पर उन्होंने एक दिन सुना कि उसी नगरीका 'सोण' नामक अत्यंत सुकोमल, सुकुमार और ऐशोआरामें पला हुआ महाधनी पुत्र अपना घर-बार छोड़कर भगवानके पास प्रव्रजित हो साधना करते हुए अर्हंत अवस्थाको प्राप्त हो गया है। यह सुनकर दोनों भाईयोंके मनमें अत्यंत धर्म-संवेग जागा और दोनों प्रव्रजित होकर विपश्यना साधनाके अभ्यासमें जुट गए। बड़ा भाई भरत अपने सत्प्रयत्नों-द्वारा अचिरकालमें ही सारे आश्रवोंसे छुटकारा पाकर अर्हंत अव-स्थाको प्राप्त हो गया। परंतु छोटे भाई नंदक की राहमें बहुत बाधाएं आयीं। यद्यपि उसने परिश्रम तो बहुत किया परंतु अनेक जन्मोंके संग्रहित विपुल कसायोंके कारण एक पर एक बाधा आती ही रही। अन्तराय आता ही रहा। शरीरकी संवेदनाओंके आधार पर अनित्यबोधकी प्रज्ञा नहीं जाग सकी। अतः नंदक बहुत निराश हो उठा। साधना करनेका सारा उत्साह खो बैठा। भरत ने अपने भाई की यह दशा देखी तो उसके मनमें पुनः उत्साह जगानेके लिए कुछ देर धर्म-चर्चा करता रहा। साधनाकी विधि समझाते हुए वह अपने भाईके साथ ध्यान केन्द्र के बाहर टहलने निकल गया। कुछ दूर जाने पर रास्तेके किनारेपर बैठकर भाईको उत्साहित कर-नेके लिए धर्म-प्रबोधिनी बातें करता रहा।

इतनेमें देखा कि बैलगाड़ियोंका एक कारवां चला आ रहा है। और देखा कि उनमेंसे एक गाड़ी का चक्का गहरे दलदलमे धंस गया है। बैल स्वयं भी घुटने-घुटने कींचड़ में धंसा हुआ गाड़ीको आगे चलानेका प्रयत्न करता रहा, पर असफल रहा। अन्ततः वहीं गिर पड़ा। गाड़ीवालने तुरंत बैलको गाड़ीके जुए से खोलकर बाहर निकाला और दाना-पानी देकर स्वस्थ किया। कुछ देर बाद पीठ थपथपाकर फिर गाड़ीमें जोत दिया। बैल उत्तम जातिका था।

धम्म वाणी

"यथा पि भद्दो आजञ्ञो, खलित्वा पतितिट्ठति।
एवं दस्सनसम्पन्नं, सम्मासम्बुद्धसावकं" ति॥

रमणीयविहारी थेर. थेरगाथा – ४५,

जिस प्रकार उत्तम जातिका भद्र बैल फिसलकर गिर जाने-परभी पुनः उठ खड़ा होता है, उसी प्रकार सम्यक् सम्बुद्ध का सम्यक् दर्शी श्रावक भी।

अशिक्षित था। उसने अपना सारा बल लगाया और गाड़ीको दलदलके बाहर निकालकर आगे बढ़ चला।

यह देखकर भरतने भाई नंदकको कहा, "देखा! इस बैलके पुरुषार्थ को।" नंदकने उत्तर दिया, "हां, देखा। जिस प्रकार यह पुरुषार्थी बैल अपने पूरे पराक्रमसे इस गहरे दलदलसे निकल सका वैसेही मैं भी अपना पूरा पराक्रम लगाकर इस भव संसारके दलदलसे बाहर निकलूंगा ही।"

और इस प्रसंगसे असीम प्रेरणा पाकर साधक नंदक विपश्यनामें जुट गया। अब तक विफलता ही विफलता का सामना करनेवाला निराश नंदक अब परम उत्साहके साथ काम करता हुआ सफलता-लाभी हुआ। विपश्यना के तेज से सारे बंधनोको जलाकर पूर्णतया मुक्त हुआ, अर्हत अवस्थाको प्राप्त हुआ। साधना सफल हुई। साधक धन्य हुआ।

विजयके हर्ष उल्लासमें नंदकने इस प्रसंगको याद करके ही यह वृषभनाद किया, "सम्यक् सम्बुद्धका सम्यक् दर्शन संपन्न श्रावक उस भद्र आजानीय वृषभके समान ही है जो कि किन्हीं कारणोंसे गिर पड़ने पर भी और अधिक संवेगबलसे उठ खड़ा होता है और आगे बढ़ जाता है।"

स. ना. गो.

(क्रमशः)

साधकोंके उद्‌गार

मैं धन्य हुआ!

– भोजराज ताराचंद संचेती

५ दिसम्बर, १९७३ को एक शादीमें शामिल होने के लिए पूनाके समीप बार्शी जा रहा था। ट्रेनमे बैठे "नव भारत टाईम्स" में छपे एक लेख पर नजर टिक गयी। इसमें "विपश्यना एवं पू. गुरुजीके बारेमें विशेष जानकारी छपी थी। इससे पहले भी इगतपुरीके एक-दो साथी विपश्यी साधकोंसे इसके बारेमें कुछ सुना था।

मुझे एक पुराना रोग था। नाककी हड्डी बढ़नेसे सांस लेनेमें कठिनाई एवं सिर-दर्द की शिकायत रहती थी। दो वर्ष पूर्व आपरेशन भी कराया था परंतु पिछली ८-१० महीनेसे तकलीफें पुनः बढ़ गयीं थीं। इगतपुरीके मेरे एक साधक मित्रने बार-बार शिविरमें जानेका आग्रह किया था परंतु मैं व्यापारी और अकेला आदमी, काम-धंधा बंद करके दस दिनके लिए शिविरमें जाऊँ, यह बात असंभव जैसी लगती थी। परन्तु होना कुछ और ही था। बढ़ते रोगको देखकर डॉक्टरोंने हड्डीका गहरा आपरेशन करनेकी सलाह दी जिसके लिए १५ दिन अस्पतालमें भरती होना पड़ेगा। मैं सोचने लगा, साधनाके लिए दस दिन निकालना असंभव लग रहा था और अब पन्द्रह दिन दूकान बन्द करनी पड़ेगी, जबकि इसमें केवल नाककी हड्डी ही नहीं, जेब भी तो कटेगी। फिर क्यों न दस दिन शिविरमें ही चला जाऊँ?

अखबारमें छपी सूचना अगले दिन याने ६ दिसम्बरको ही देवलालीमें आरंभ होनेवाले शिविरके लिए आमंत्रण दे रही थी, जबकि मैं सालेजीके लड़केकी शादीमें शामिल होने बार्शी जा रहा था। कैसे करूं? बहुत उधेड़-बुनके बाद पुण्यकी विजय हुई और मन ही मन शिविरमें जानेका फैसला करके साले के यहाँ विवाह स्थल पर न जाकर सीधे शिविर-स्थल जानेका कार्यक्रम बनाया, वह भी ससुरालवालोंकी अनुमति लिए बिना ही। क्योंकि जानता था कि ऐसी अनुमति आसानीसे नहीं मिल सकती। रातों-रात यात्रा करके सीधे देवलाली पहुँचा तो पता लगा कि शिविर शामको आरंभ होगा। अतः बिस्तर आदि लेनेके लिए अपने घर इगतपुरी चले आया। घर पर वयोवृद्ध पू. पिताजीने शिविरके लिए अनुमति दे दी।

दोपहरकी गाड़ीसे देवलाली जानेके लिए इगतपुरी स्टेशन जा रहा था कि अचानक एक कार देवलालीका रास्ता पूछती मिली। बात-चीतके दौरान पता चला कि बम्बई के उद्योगपति श्री रंगीलभाई मेहता अपने पुत्र एवं मैनेजर सहित विपश्यना शिविरमें ही जा रहे थे। मुझे भी साथ ले लिया। मैं सोचने लगा देखो, धर्म यहीं से सहायता करने लगा है।

शामको निश्चित समय पर शिविर आरंभ हुआ। आना-पान देते हुए पू. गुरुजी गोयन्काजीने सांस के आवागमन पर ध्यान केन्द्रित करनेको कहा। परन्तु नाकके आपरेशन एवं नाजल-ड्राप्स की सैकड़ो बोतलें उपयोग कर लेनेके कारण सांस महसूस नहीं होती थी। दूसरे दिन दोपहरको पू. गुरुजीसे उपाय पूछा तो उन्होंने इसी प्रकार कोशिश करते रहनेकी सलाह दी। इस प्रकार तीन दिन यूं ही गुंजरे पर सांसकी जानकारी नहीं हो पायी। चौथे दिन विपश्यनाके समय कहीं-कहीं कुछ संवेदनएँ जरूर महसूस हुईं परन्तु उसके बाद पुनः सब कुछ बन्द। न सांस महसूस हो, न संवेदना। छठे दिन पू. गुरुजीसे मिलकर फिरसे विपश्यना देनेका आग्रह करने लगा। उन्होंने समझाया, "भाई! जैसे सांस सदा आती-जाती रहती है, वैसे ही संवेदना भी होती रहती है। सिर्फ उसे देखने, जाननेका प्रयास जारी रखो। मनका संतुलन बनाए रखो। सफलता मिलेगी ही।" मन ही मन सोचने लगा यहाँ तो अपनी बात कोई मानता ही नहीं। जो चीज मुझे महसूस ही नहीं होती, उसे कैसे देखूं? एक बार फिरसे विपश्यना दे देते तो गुरुजीको क्या फरक पड़ता? इससे तो अच्छा अस्पतालमें छह दिन कट गए होते। अभी भी चलो, शेष चार दिन तो बच जायेंगे। लेकिन शिविरके बीचमेंसे जाना भी उचित नहीं था। अतः उनके सुझाव को स्वीकार कर प्रयत्न करते रहा। परिणाम मिला। आठवें दिन जरा सांस और संवेदना भी महसूस होने लगी। मनमें उत्साह बढ़ा।

संयोगवश उसी दिन शामको पता चला कि पू. गुरुजीने आश्रमके लिए लोनावलामें कोई जगह देखी थी जो किसी कारण-वश तय नहीं हुई। बस इतना सुनते ही मनमें क्या-क्या विचार आए, कैसे बताऊँ? इतनी अच्छी धर्म-गंगा क्यों न इगतपुरीमें बहे। कहीं और न चली जाय। इसी उधेड़-बुनमें ९ वाँ दिन बीता। नहीं रहा गया तो माननीय ट्रस्टीजीसे आश्रमके बारेमें बात करनी

चाह। ।शिविर व्यवस्थाके काममें अत्यधिक व्यस्त होने पर भी उन्होंने बादमें बात करनेका आश्वासन दिया। दसवें दिन लगभग दस बजे शिविर समाप्त होने पर सब लोग साधना कक्ष (तंबू) के बाहर जा रहे थे, पर मेरा मन मुझे वहाँसे जाने नहीं दे रहा था। मैं सीधे पू. गुरुजीके पास पहुँचा। आश्रमके बारेमें जानकारी लेना चाहता था परन्तु बात-चीतमें बहुत निपुण न होने के कारण सोचा पहले इन्हें घर पर पदार्पणका निमंत्रण देकर वहीं बात करेंगे। उनका कार्यक्रम शीघ्र बम्बई लौटनेका था। मैंने रास्तेमें पांच मिनट रुकनेका आग्रह किया। पू. गुरुजीने कहा, "ऐसे पांच पांच मिनट सबके घर रुकूँ तो कहाँ पहुँच पाऊँगा?" नम्रभावको पहचानते हुए किसी प्रकार उन्होंने हाँ भरी परन्तु कहा, "देखना, कहीं पांच मिनटकी जगह पांच घंटे न लग जाँय!" सतर्क रहनेका मैंने आश्वासन दिया।

मनमें अतीव प्रसन्नता लिए हुए बाहर निकला। इगतपुरीका मौसम वर्ष भर बहुत सुहावना रहता है। न अधिक गर्मी, न अधिक ठंड। बरसातमें तीन महीने पहाड़ियों पर से जैसे दूधके झरने बहते हैं। ऐसे में धर्म की यह पावन गंगा यहींसे क्यों न प्रवाहित हो। यही सारे भाव मनपर चल रहे थे। जहाँ एक ओर इतनी बड़ी प्रसन्नता हो रही थी, वहीं दूसरी ओर एक हिचक भी थी कि पता नहीं पू. गुरुजी इगतपुरीको पसंद करेंगे या नहीं। एक बात और थी कि गुरुजीके पास तो कार है, कहीं वे जल्दी निकल न जाँय। अतः बिना भोजन किए ही जल्दी से जल्दी वहाँसे निकलकर इगतपुरी पहुँचना चाहता था। ये सारे द्वन्द लिए हुए भोजन शालामें पहुँचकर मेरे साथी श्री रंगीलभाई मेहताको सारी बातें बताईं तो उन्होंने आश्वासन दिया कि भोजन कर लें फिर सब लोग उनकी कारमें साथ ही चलेंगे और जल्दी पहुँच जायेंगे।

सब काम यथासमय हुए। घर पर चाय-पानके समय पू. गुरुजीसे जगह व आश्रमके बारेमें चर्चा चली। मैंने कहा यदि आपके पास समय हो तो एक दो स्थान यहाँ भी दिखाऊँ? सहमति मिलने पर पहले जो एक दो स्थान दिखाए वह उन्हें पसंद नहीं आए। फिर कुछ सोचकर उनसे ही पूछा कि आप किस तरहका स्थान पसंद करेंगे? उन्होंने बताया कि शहरके बीचमें न हो और न ही इतनी दूर हो कि वहाँ बिजली, पानी, टेलीफोन और यातायातकी कठिनाई हो। इस चर्चाके बाद जो जगह ध्यानमें आयी वह आजकी "धम्मगिरि" है।

उस समय यहाँ तक आनेके लिए कारके लायक रास्ता नहीं था फिरभी श्री रंगीलभाईने ऊबड़ खाबड़ रास्तेको पारकर पू. गुरुजीको यहाँ तक लानेका साहसपूर्ण कार्य किया। यहाँ पहुँचकर पू. गुरुजीने इधर-उधर निगाह दौड़ाई और दो मिनट बाद ही इस जगहके लिए स्वीकृति दे दी। उस वक्त मेरी खुशीका कोई ठिकाना नहीं था। इतनेमें एक भाई बोल उठा, "वह देखो, बगलमें अग्निसंस्कार हो रहा है, मुर्दा जल रहा है" एकाएक मेरी खुशियों पर जैसे तुषारपात हो गया। पर दूसरे ही क्षण पू. गुरुजी मुस्कराकर बोले, "अच्छा है न भाई! हर साधक के अन्दर हर क्षण अनित्यताका भाव उद्दीप्त करता रहेगा।" इतना सब होते होते पांच घंटे हो गए। पू. गुरुजीके मुँह से निकले शब्द सचमुच खाली नहीं गए। पांच मिनट की जगह पांच घंटे लग ही गए। जानेके पूर्व उदारचेता श्री. रंगीलभाई मेहताने जमीन मालिकका नाम, पता नोट किया और मुँह मागे दाम पर जमीन खरीदकर ट्रस्ट को दान कर दी।

१६ दिसम्बर, १९७३ का यह दिन मेरे जीवनका सबसे अधिक प्रसन्नताका दिन था। धर्म प्राप्त होनेके साथ-साथ मनकी मुराद भी पूरी हुई थी। इसके बादसे नियमित साधना करते हुए यथासंभव धर्म सेवाके काममें लगा हूँ। नाककी हड्डीका आपरेशन करनेकी आवश्यकता कभी नहीं हुई और न ही किसी प्रकारकी गोली या नाजल ड्राप्सका ही सेवन किया। यही नहीं मुक्तिदायक धर्मका मंगल मार्ग मिल गया। मेरा जीवन सार्थक हुआ। मैं धन्य हुआ। मनमें अब यही भाव हैं कि इस कल्याणकारिणी विद्यासे बहुतोंका मंगल हो! सारे प्राणी सुखी हों! सबकी स्वस्ति-मुक्ति हो!

●

विसर्जन आश्रम, इन्दौर के श्री मानवमुनि लिखते हैं "आठ दिन मौन ध्यानमें एकान्त वास रहा। जीवनका वास्तविक लक्ष्य व शांतिकी खोज मनुष्य बाह्य जगत में करता है। चन्द्रलोक व मंगल तक पहुँचा है पर शांति नहीं प्राप्त हो सकी। विज्ञान भौतिक पदार्थों में विकास कर रहा है जिससे कि अंत में उसे विकासके स्थान पर विनाश ही प्राप्त होगा।

आध्यात्मिक शक्तिके बिना वास्तविक शांति नहीं मिल सकती और वह शांति बाह्य दुनियामें नहीं, अन्तर में ही है। उसे खोजना है तो बाह्य बंधनों व आवरणों से मुक्त होकर ध्यानकी ओर झुकना होगा। ध्यान भी विवेकके साथ हो, राग-द्वेषसे मुक्त हो, विश्व बंधुत्वकी भावना, समताभाव हो तब साधक अपनी वेदना, रोग व दुख-दर्दको भूल जाता है। उसे अनुपम सुख एवं आनंदकी अनुभूति होती हैं। इसके लिए ध्यानमें नियमित होना आवश्यक है व भोजन भी सादा हो। सादा जीवन, उच्च विचार।

बौद्ध साहित्यमें समाधि एवं निर्वाण प्राप्त करनेके लिए ध्यान के साथ अनित्य भावनाको भी महत्व दिया गया है। तथागत बुद्ध अपने शिष्योंसे कहते हैं, हे भिक्षुओ! रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, संज्ञा अनित्य है, संस्कार अनित्य है, विज्ञान अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःखप्रद है। जो दुःखप्रद है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह 'मैं' नहीं हूँ, 'मेरा' नहीं है। इस प्रकार संसारके अनित्य स्वरूपको देखना चाहिए। क्योंकि "यद निच्चं तं दुक्खं" जो अनित्य है वह दुःखका रूप है।

जैन विचारकोंने भी अनित्य भावना के चिन्तनको महत्व दिया है। भरत चक्रवर्ती ने इस अनित्य भावना के द्वारा ही चक्रवर्ती वैभव भोगते हुए केवल ज्ञानको प्राप्त किया था। आचार्य हेमचन्द ने भी अनित्य भावनाका यही स्वरूप बताया।

विपश्यना ध्यान शिविरमें सभी धर्म, सम्प्रदाय, जाति बल्कि पूर्ण मानव समाज सम्मिलित होकर वास्तविक शांतिकी अनुभूति प्राप्त करते हैं। किसी भी प्रकारसे भेदभाव नहीं है। यह बहुत अच्छी बात है।"

हैदराबादका एक साधक सदाशिव सातपुते लिखता है, "आपके अंग-प्रत्यंगसे धर्मका प्रकाश निकलता है। मैं उस प्रकाशमें चलनेका प्रयास करताहूँ। आपके प्रति जितनी कृतज्ञता व्यक्त करूं उतनी कम है। क्योंकिआपने हमें जो साधना सिखाई वह दुःख-विमुक्तिका मार्ग है। विपश्यना शिविर में बैठनेके लिए मुझे कम्पनीसे छुट्टी नहीं मिली पर जब समय मिलता है तो मैं विपश्यना ध्यान साधनाका अभ्यास नियमित करता हूँ। उसका जो लाभ मुझे दैनिक जीवनमें हो रहा है उसे मैं वाणी या शब्द द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। चूंकि धर्म जीनेकी कला है इसलिए मैं धर्म में जीनेका प्रयत्न करता हूँ। विपश्यना ध्यान साधनासे अनात्मका दर्शन होता है जिससे मनके सारे बोझ हल्के होते हैं और मन निरन्तर निर्मल होता है। इसलिए मैं विपश्यना को एक शुद्ध निर्मल जल समझता हूँ और उसका जो अभ्यास है वह साबुन है। इसे रगड़ते हैं तो सारे मैल धुल जाते हैं जो कि यह मैल ही हमारे दुःखका कारण है। जब-जब मेरे मन पर राग, द्वेष और मोहका आक्रमण होता है तो मैं विपश्यनाका आसरा लेता हूँ और तब पता चलता है कि सारे संस्कार अनित्य ही तो हैं। केवल तरंगे ही तरंगे है। आसक्ति टूटती है और जीवन जीनेका मार्ग दिखाई देता है। यह सब आप जैसे महाकारुणिक, प्रज्ञावान मार्गदर्शक के बिना असंभव है! इस विषयमें आपकी बड़ी कृपा है।"

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दूहा धरम रा

मत रो मत रो बावळा, देख विफल परिणाम।
हार जीत दोनूं हुवै, ई जीवन संग्राम ॥१॥
रोया धोयां बावळा, बदलै ना अंजाम।
अपणो अनरथ ही करै, बणै न बिगड़्यो काम ॥२॥
रो रो आंख्याँ सूजग्यी, हिवड़ो हुयो हतास।
लांबी सांसा न्हाकताँ, पूरी हुवै न आस ॥३॥
अंतर त्याग उदासियाँ, पग पग बढ़नो सीख।
उद्यम सूं ही फळ मिलै, मांग्या मिलै न भीख ॥४॥
यो मुकती को मार्ग है, सूराँ हन्दो पंथ।
कायर कदम न रख सकै, बढ़ै बीर बलवंत ॥५॥
प्रबल पराक्रम ही करै, सन्त देह परजन्त।
धरम पंथ पर जूझतो, करै दुखाँ को अन्त ॥६॥

दोहे धर्म के

होय न पूर्वाताप ही, होय न पश्चात्ताप।
उत्ताप्रन से मिट सके, कैसे भव संताप? ॥१॥
भूल होय झट रोक ले, करे प्रकट स्वीकार।
सजग होय फिर ना करे, तो ही छुटे विकार ॥२॥
सम्मुख बाधा देखकर, मत रुक मत भय खाय।
शूर कभी संग्राम में, पीठ नहीं दिखलाय ॥३॥
गिर गिर पड़ पड़ फिर उठे, सतत् बढ़े बलवान।
कभी न हत उत्साह हो, पावे लक्ष्य महान ॥४॥
पग पग बढता ही रहे, प्रबल रहे पुरुषार्थ।
धर्म पथ दोनो सधे, स्वार्थ और परमार्थ ॥५॥
काटे रोड़े दूर हों, बाधा सब मिट जांय।
धर्म वीर के पंथ पर, सहज सुमन बिछ जांय ॥६॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/–आजीवन शुल्क रु. १०० /–

विपश्यना" 12/84

पो. र. नं. NS(M) 16/84

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३
(नासिक, महाराष्ट्र)